इकाई 22 भारत का विदेशी व्यापार

इकाई की रूपरेखा

22.0 उद्देश्य
22.1 प्रस्तावना
22.2 आर्थिक विकास में विदेशी व्यापार की भूमिका
  22.2.1 विकास में योगदान
  22.2.2 व्यापार पर रुकावटें
  22.2.3 व्यापार नीति
22.3 भारत में विदेशी व्यापार की प्रवृत्तियों का विश्लेषण
  22.3.1 विदेशी व्यापार की मात्रा
  22.3.2 विदेशी व्यापार की संरचना
  22.3.3 विदेशी व्यापार की दिशा
22.4 भारत के विदेशी व्यापार की मात्रा
  22.4.1 निर्यातों का मूल्य
  22.4.2 निर्यातों के धीमी गति से बढ़ने के कारण
  22.4.3 आयातों का मूल्य
  22.4.4 आयात एवं राष्ट्रीय आय
22.5 व्यापार-घाटे एवं व्यापार शर्तें
22.6 भारत के विदेशी व्यापार की संरचना
  22.6.1 निर्यातों की संरचना
  22.6.2 आयातों की संरचना
22.7 भारत के विदेशी व्यापार की दिशा
  22.7.1 निर्यातों की दिशा
  22.7.2 विविधीकरण अथवा केंद्रीकरण
  22.7.3 आयातों की दिशा
22.8 सारांश
22.9 शब्दावली
22.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें
22.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

22.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप इस योग्य हो सकेंगे कि :

- आर्थिक विकास में विदेशी व्यापार की भूमिका की चर्चा कर सकें;
- आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप किसी देशी के विदेशी व्यापार के ढाँचे में किस प्रकार के परिवर्तन आ पाते हैं इसकी जाँच कर पाएँ;
- राष्ट्रीय आय तथा निर्यात एवं आयात की मात्रा के परस्पर संबंध की समीक्षा कर सकें;
- आयातों और निर्यातों की बदलती संरचना की समीक्षा कर सकें;
- उन नए देशों की पहचान कर सकें जिनसे भारत व्यापारिक संबंध स्थापित कर रहा है; तथा
- भारत के विदेशी व्यापार के बदलते ढाँचे की रूपरेखा प्रस्तुत कर सकें।

22.1 प्रस्तावना

आधुनिक युग खुली अर्थव्यवस्थाओं का युग है। शेष-विश्व से आर्थिक कटाव की पुरानी नीति न तो कोई देश जब अपनाना ही चाहता है और न ही ऐसा करना संभव है। प्रत्येक देश शेष विश्व के साथ विभिन्न तरह के लेन-देन करता है। इन संव्यवहारों से सभी देश लाभांवित होते हैं और फिर अब जो 'सूचना क्रांति' (Information Technology Revolution) चल रही है उसके परिणामस्वरूप तो सारे ही विश्व को ही विश्वीय ग्राम (Global Village) की संज्ञा देना गलत नहीं होगा। ऐसे परिवेश में किसी भी एक देश की घरेलू परिस्थितियाँ बाहरी दबावों से प्रभावित होती हैं। इन बाहरी दबावों में प्रमुख हैं वस्तुओं के आदान-प्रदान। वस्तुओं के इसी आदान-प्रदान को हम विदेशी व्यापार का नाम देते हैं। प्रस्तुत इकाई में हम इस बात का अध्ययन करेंगे कि आर्थिक विकास प्रक्रिया में विदेशी व्यापार की क्या भूमिका रहती है। हम भारत के विदेशी व्यापार के बदले ढाँचे की भी विस्तृत समीक्षा करेंगे और इस बात का अध्ययन करेंगे कि आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप इस ढाँचे में किस प्रकार के परिवर्तनों का आभास हो रहा है।

22.2 आर्थिक विकास में विदेशी व्यापार की भूमिका

अतीत में आर्थिक विकास की भूमिका 'विकास के इंजन' (Engine of Growth) के रूप में रही है (19वीं शताब्दी में इंग्लैण्ड, 20वीं शताब्दी में जापान इस बात का का ज्वलंत उदाहरण है।) हाल ही के वर्षों में पूर्वी एशिया के देशों ने बाह्य-क्षेत्र की ओर झुकाव वाली विकास युक्ति (Outward Oriented Growth Strategy) अपनाकर पुनः यह सिद्ध कर दिया है कि विदेशी व्यापार के माध्यम से सीमित साधन वाले निर्धन अल्पविकसित देश विकास की सीढ़ी पर तेजी से ऊपर चढ़ सकते हैं। इन देशों में प्रमुख रहे हैं – कोरिया, ताइवान, सिंगापुर एवं हाँगकाँग।

22.2.1 विकास में योगदान

विदेशी व्यापार विभिन्न तरीकों से किसी देश के आर्थिक विकास को प्रभावित करता है जैसा कि निम्न वर्णन से स्पष्ट होगा।

पहला, विदेशी व्यापार के माध्यम से एक देश उन पूँजीगत वस्तुओं के आयात को संभव बना सकता है जिनकी अनुपस्थिति में विकास की क्रिया को आरंभ करना कठिन है।

दूसरा, विदेशी व्यापार के माध्यम से अल्पविकसित देशों को विकसित देशों में प्रचलित तकनीक का प्रवाह संभव हो पाता है। विकसित तकनीक के प्रयोग से संसाधनों की उत्पादकता में सुधार हो पाता है और साथ गुणक प्रभाव के परिणामस्वरूप उपलब्ध संसाधनों को रोज़गार भी मिल पाता है।

तीसरा, विदेशी व्यापार अल्पविकसित देशों में गव्यात्मक परिवर्तनों के लिए निम्न कारणों से दबाव भी डालते हैं: (i) आयातित वस्तुओं से बढ़ती प्रतिस्पर्धा, (ii) विदेशी बाज़ारों में सामान बेचने की निर्यातकों में होड़, (iii) संसाधनों का बेहतर एवं समुचित वितरण।

चौथा, निर्यातों के परिणामस्वरूप उपलब्ध उत्पादन क्षमता का पूर्ण उपयोग, पैमाने की मितव्ययिताओं की प्राप्ति, उत्पादन योजनाओं की घरेलू बाज़ारों के उच्चावचनों से मुक्ति एवं घरेलू उत्पादन इकाइयों द्वारा विकसित तकनीकों के अपनाने की योग्यता का विस्तार होता जाता है।

पाँचवाँ, विदेशी व्यापार के परिणामस्वरूप घरेलू श्रमिकों के कल्याण में भी निम्न कारणों से वृद्धि संभव हो पाती है : (i) निर्यातों में वृद्धि के कारण घरेलू मजदूरी-दरों में सुधार की अपेक्षा बनी रहती है। (ii) श्रमिकों को भी अनेक तरह की ऐसी उपभोक्ता वस्तुएँ भी आसानी से तथा कम कीमतों पर उपलब्ध हो पाती हैं जिनका कि आयात किया गया हो। (iii) चूँकि श्रमिकों द्वारा उत्पादित वस्तुओं के मूल्य निरंतर बढ़ते रहते हैं इसका अभिप्राय यह भी है कि उनकी उत्पादकता में बराबर सुधार होता रहता है।

अंततः अनेक विकासशील देशों में जैसे-जैसे विदेशी व्यापार का विस्तार हुआ निर्धनता का प्रकोप भी क्रमशः कम होता गया और ये विकसित देशों की पंक्ति में जाकर गिने जाने के योग्य बन गए।

22.2.2 व्यापार पर रुकावटें

निःसंदेह आर्थिक विकास में विदेशी व्यापार की महत्त्वपूर्ण भूमिका निभानी होती है। किंतु, उपलब्ध अंतरराष्ट्रीय परिवेश में गैर-तेल उत्पादक विकासशील देशों को अनेक ऐसी रुकावटों का सामना करना पड़ रहा है जिसके परिणामस्वरूप वे विदेशी व्यापार से पूरी तरह से लाभांवित नहीं हो पा रहे हैं। इन रुकावटों में से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं :

पहला, विकासशील देश प्रमुखतः प्राथमिक वस्तुओं का ही निर्यात कर सकते हैं। किंतु विश्व बाज़ारों में प्राथमिक वस्तुओं की माँग की वृद्धि दर कुल व्यापार की वृद्धि दर एवं विभिन्न देशों के राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि दर की तुलना में कम रही है। परिणामस्वरूप, जहाँ एक ओर विश्व के कुल विदेशी व्यापार की मात्रा और मूल्य में निरंतर भारी वृद्धि जारी है विदेशी व्यापार में प्राथमिक वस्तुओं का हिस्सा निरंतर कम होता जा रहा है। वर्ष 1955 में विश्व के कुल निर्यातों में प्राथमिक वस्तुओं का हिस्सा 50 प्रतिशत से भी कुछ अधिक था, जबकि वर्ष 1998 में यह कम होकर मात्र 25 प्रतिशत रह गया है। प्राथमिक वस्तुओं में गिरते व्यापार की प्रकृति के लिए निम्न कारक ज़िम्मेदार हैं : (i) विकसित देशों द्वारा कृषि-जन्य पदार्थों के आयात पर तटकर (tariff) एवं गैर-तटकर (non-tariff) प्रतिबंध लगाए गए हैं जिनके द्वारा वे अपने कृषि क्षेत्र को संरक्षण प्रदान करते हैं। (ii) औद्योगिकीकरण के कारण विकसित देशों में कृषि-जन्य पदार्थों की जिस मात्रा में माँग अपेक्षित थी वैसा नहीं हुआ। (iii) कृत्रिम स्थानापन्नों (synthetic substitutes) का विकास, एवं (iv) विकसित देशों में जनसंख्या के आकार में कोई वृद्धि नहीं हो रही। इन सब कारकों के संयुक्त परिणामस्वरूप कृषि-जन्य पदार्थों की माँग में अपेक्षित वृद्धि नहीं हो पाई।

दूसरा, चूँकि विकासशील देशों द्वारा किए जाने वाले निर्यात अपेक्षाकृत धीमी गति से बढ़ते रहे हैं इसलिए इनके निर्यातों का समस्त विश्व द्वारा किए गए कुल निर्यातों में हिस्सा निरंतर कम होता जा रहा है। जहाँ वर्ष 1950 में यह हिस्सा 31 प्रतिशत था वर्ष 1960 में यह कम होकर 14 प्रतिशत तथा वर्ष 1997 में मात्र 3.9 प्रतिशत रह गया। इस उत्तरोत्तर कमी के लिए अनेक कारक जिम्मेदार रहे, जैसे व्यापार गुटों (trade block) की स्थापना, प्रतिबंधात्मक व्यापारिक क्रियाएँ, एकाधिकार की प्रवृत्ति आदि। ये सब प्रवृत्तियाँ इस बात का संकेत देती हैं कि विकासशील देशों को अथक प्रयास करने होंगे यदि वे इच्छुक हैं कि विदेशी व्यापार के रास्ते वे तेज गति से आर्थिक विकास को प्राप्त कर सकें।

तीसरा, चूँकि प्राथमिक वस्तुओं में अंतरराष्ट्रीय व्यापार का हिस्सा निरंतर कम होता जा रहा है परिणामस्वरूप व्यापार-शर्तें (terms of trade) भी विकासशील देशों के प्रतिकूल होती जा रही है। जबकि एक ओर विकसित देशों द्वारा निर्यात किए जाने वाले पदार्थों, विशेष रूप से पूँजीगत साज-सामान की कीमतें निरंतर बढ़ती रही है प्राथमिक वस्तुओं की कीमतें

गिरती ही रही हैं। उदाहरणस्वरूप, UN द्वारा हाल ही में प्रकाशित रिपोर्ट के अनुसार अतीत में जहाँ 2 टन चीनी के बदले में एक ट्रेक्टर उपलब्ध हो जाता है वर्तमान में अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में एक ट्रेक्टर खरीदने के लिए 7 टन चीनी के निर्यात की आवश्यकता होती है। एक अन्य अनुमान के अनुसार आठवें दशक के दौरान गैर-तेल कच्चे मालों की कीमतों में गिरावट के परिणामस्वरूप विकासशील देशों को उनके GDP के एक से तीन प्रतिशत के बराबर मूल्य की हानि झेलनी पड़ी। व्यापार-शर्तों की प्रतिकूलता आर्थिक विकास में बाधक सिद्ध होती है। अंततः, विकसित देशों द्वारा अपनाई गई प्रतिबंधात्मक व्यापार नीतियों से विकासशील देशों द्वारा विनिर्मित वस्तुओं के निर्यात पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं। सच यह है कि बढ़ते हुए वैश्वीकरण (globalisation) के परिणामस्वरूप विकसित देशों को भी अनेक प्रकार की समायोजन की समस्याओं का सामना करना पड़ा है। इसी प्रक्रिया में वे विकासशील देशों के प्रति इस तरह का रुख अपना रहे हैं।

संक्षेप में, वर्तमान में विकासशील राष्ट्रों को अनेक तरह के प्रतिबंधों एवं रुकावटों का सामना करना पड़ रहा है। इस परिवेश में विकासशील देश अंतरराष्ट्रीय व्यापार पर पूरी तरह से निर्भर नहीं रह सकते। यदि वे अपनी विकास की दर को बढ़ाना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि ये अपने घरेलू आर्थिक ढाँचे को मजबूत बनाए और ऐसी व्यापारिक नीतियों को अपनाएँ जिनसे वे विद्यमान अंतरराष्ट्रीय वातावरण से लाभांवित हो सकें।

22.2.3 व्यापारिक नीति

व्यापारिक नीति में उन सभी नीतियों को शामिल किया जाता है जोकि किसी देश के विदेशी व्यापार को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप किसी भी तरह से प्रभावित करती हैं। इन नीतियों का स्वरूप देश द्वारा अपनाई गई व्यापार युक्ति (trade strategy) का स्वरूप आयोजनकर्ताओं द्वारा आर्थिक विकास के लिए अपनाई गई विकास-युक्ति पर निर्भर करता है। उदाहरणस्वरूप, यदि आर्थिक विकास-युक्ति में उद्योगों की अपेक्षा कृषि के योगदान को प्राथमिकता दी जा रही है तो इस बात की झलक व्यापार-युक्ति और संबद्ध विकास नीति में स्पष्ट दिखलाई देनी चाहिए। हम प्रमुखतः दो तरह की विकास युक्तियों में भेद कर सकते हैं : अंदर की ओर उन्मुख युक्ति (inward-oriented strategy) एवं बाहर की ओर उन्मुख युक्ति (outward-oriented strategy)।

अंदर की ओर उन्मुख युक्ति का संबंध प्राय संरक्षणवाद (protectionism) एवं आयात प्रतिस्थापन (import substitution) से होता है जबकि बाहर की ओर उन्मुख युक्ति का संबंध मुक्त व्यापार (free trade) व निर्यात संवर्धन (export promotion) से होता है। अंदर की ओर उन्मुख युक्ति में प्रायः विदेशी पूँजी के अंतर्वाह पर रोक लगा दी जाती है। इसी प्रकार अन्य अंतरराष्ट्रीय व्यवहारों को बढ़ने से रोका जाता है। इसके विपरीत, बाहर की ओर उन्मुख विकास नीति में बाहरी संव्यवहारों को बढ़ावा दिया जाता है तथा घरेलू अर्थव्यवस्था और शेष-विश्व के बीच घनिष्ठता बढ़ाने के प्रयास किए जाते हैं।

बाहर की ओर उन्मुख युक्ति के समर्थकों का यह मत है कि शेष-विश्व के साथ घनिष्ठ संबंधों के परिणामस्वरूप प्रत्येक अर्थव्यवस्था को नई-नई बातें, नए बाज़ारों, साधनों एवं नई तकनीकों की जानकारी मिल पाती है जोकि अंतरराष्ट्रीय व्यापार की मात्रा और घरेलू उत्पादों के स्तर को बढ़ाने में सहायक होती हैं।

इसके विपरीत यदि किसी देश द्वारा अंतरराष्ट्रीय रुकावटें लगाई जाती हैं तो इनके परिणामस्वरूप घरेलू बाज़ारों में उत्पत्ति के संसाधनों का उचित आबंटन नहीं हो पाता, उनका प्रतिस्पर्धात्मक प्रयोग संभव नहीं हो पाता और फलतः उत्पादन ढाँचे में अनेक तरह

की विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

अंदर की ओर उन्मुख युक्ति के समर्थकों का यह विश्वास है कि विद्यमान परिवेश में विकासशील देशों द्वारा दरवाजे पूरी तरह से खुले नहीं छोड़ दिए जा सकते। यदि वे ऐसा करेंगे तो विकसित देश उन्हें लूटमार कर ले जाएँगे। उन्हें अपने घर की सुरक्षा का प्रबंध स्वयं करना होगा और यह सुरक्षा तब तक आवश्यक रहेगी जब तक कि एक देश विदेशी आर्थिक संव्यवहारों की थपेड़ों को सहन करने के योग्य नहीं हो जाते। यह सुरक्षा आर्थिक संव्यवहारों पर विभिन्न प्रकार के प्रतिबंध और रोक लगाकर ही संभव है।

इस संदर्भ में विभिन्न देशों के अनुभव अलग-अलग रहे हैं। अतः यह कहना संभव नहीं हो पाया है कि उपरोक्त दोनों विकल्पों में से कौन-सा निश्चय ही बेहतर है। घरेलू परिस्थितियों के अनुरूप दोनों युक्तियों का एक समायोजित रूप प्रत्येक देश द्वारा अपनाया जा सकता है।

बोध प्रश्न 1

1) विकासशील अर्थव्यवस्था के लिए विदेशी व्यापार के चार लाभ बतलाएँ।

.....

.....

.....

.....

.....

2) व्यापार के मार्ग में चार बाधाएँ बतलाएँ।

.....

.....

.....

.....

.....

3) निम्न को परिभाषित करें :

i) व्यापार का मूल्य;
ii) व्यापार की मात्रा;
iii) व्यापार की संरचना;
iv) व्यापार की दिशा।

.....

.....

.....

.....

.....

....

....

....

....

....

....

....

....

4) निम्न में से एक विकासशील देश किन वस्तुओं का निर्यात करता है :

क) विनिर्मित उपभोक्ता वस्तुएँ
ख) विनिर्मित पूँजीगत वस्तुएँ
ग) कृषि-जन्य वस्तुएँ
घ) टूल एवं उपकरण

22.3 भारत के विदेशी व्यापार की प्रवृत्तियों का विश्लेषण

किसी देश के विदेशी व्यापार का विश्लेषण करने के लिए प्रमुख रूप से निम्नलिखित तत्त्वों पर विचार करना होता है : (क) व्यापार की मात्रा, (ख) व्यापार की संरचना, तथा (ग) व्यापार की दिशा।

22.3.1 विदेशी व्यापार की मात्रा

व्यापार की मात्रा अंतरराष्ट्रीय सौदों के परिणामों को प्रकट करती है। चूँकि अंतरराष्ट्रीय सौदों में अनेक वस्तुएँ शामिल होती हैं तथा परिणाम को ज्ञात करने के लिए उनका मौद्रिक मूल्य को ज्ञात करना पड़ता है, इसलिए व्यापार की मात्रा की जानकारी के लिए इस मूल्य को ज्ञात करना आवश्यक है। व्यापार की मात्रा की प्रवृत्ति का अध्ययन करने पर हम एक अर्थव्यवस्था में विभिन्न अवधियों में कार्यशील प्रमुख शक्तियों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन व्यापार के निरपेक्ष मात्रा में परिवर्तनों की जानकारी एक संतोषजनक सूचक नहीं है। इसलिए, व्यापार के मूल्य में परिवर्तनों के साथ दो अन्य चरों में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक है। ये दो चर निम्नलिखित हैं :

i) राष्ट्रीय आय में योगदान, तथा

ii) विश्व के व्यापार में योगदान।

इसके अलावा निर्यात के मूल्य में होने वाले परिवर्तनों की तुलना आयात में होने वाले परिवर्तनों के साथ करनी पड़ती है। इन दोनों चरों के बीच संबंध को 'व्यापारिक शर्तें' (terms of trade) कहते हैं। व्यापार की शर्तों का आशय इन शर्तों से है जिनके अनुसार निर्यात का विनिमय आयात के लिए किया जाता है। यदि आयातों की तुलना में निर्यातों का मूल्य अधिक है तो व्यापार की शर्तों को अनुकूल कहा जाता है। अनुकूल व्यापार की शर्तों का आशय है कि एक देश अपने निर्यातों के निर्दिष्ट मूल्य के बदले में अधिक मूल्य की

वस्तुओं का आयात कर सकता है। इसके विपरीत व्यापार की शर्तें उस स्थिति में प्रतिकूल होती जाती हैं जबकि एक देश के नियातों का मूल्य उसके आयातों के मूल्य की तुलना में कम होता है। दूसरे शब्दों में, व्यापार की शर्तों के प्रतिकूल होने पर एक देश को कम मूल्य के आयातों के लिए अधिक मूल्य की वस्तुओं का निर्यात करना पड़ता है।

22.3.2 विदेशी व्यापार की संरचना

विदेशी व्यापार की संरचना एक देश के विकास के स्तर की परिचायक है। उदाहरण के लिए अधिकांश विकासशील अर्थव्यवस्थाएँ अपनी निर्यात आय के लिए कुछ चुनी हुई प्राथमिक वस्तुओं पर आश्रित रहती हैं। ये अर्थव्यवस्थाएँ कृषि पर आधारित कच्चे माल का निर्यात करती हैं, तथा निर्मित औद्योगिक वस्तुओं का आयात करती हैं और इस प्रकार इनको मूल्य संवृद्धि के लाभ उपलब्ध नहीं हो पाते। जैसे-जैसे एक देश का विकास होता है, इसके विदेशी व्यापार में विविधता आती जाती है तो वह कुछ चुनी हुई वस्तुओं के निर्यात पर ही आश्रित नहीं रह जाता। विकास के साथ यह देश औद्योगिक निर्मित वस्तुओं का निर्यात आरंभ कर देता है और औद्योगिक कच्चे माल, पूँजीगत उपस्करों तथा तकनीकी ज्ञान का आयात करता है।

22.3.3 विदेशी व्यापार की दिशा

विदेशी व्यापार की दिशा देश के विकास के ढाँचे एवं स्तर को प्रकट करती है। जैसे-जैसे एक देश का विकास होता है और उसके विकास में विविधता आती है, इसके साथ ही निर्यात के लिए नए बाज़ारों की व्यवस्था करनी पड़ती है। इसी के साथ देश के आयात के क्षेत्रों का भी विस्तार होता है। विकास के साथ यह देश विश्व के अधिकाधिक देशों के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित करने लगता है।

अब हम भारत में आर्थिक आयोजन की अवधि में विदेशी व्यापार की प्रवृत्तियों का अध्ययन उपरोक्त तीन संघटकों के आधार पर करेंगे।

22.4 भारत के विदेशी व्यापार की मात्रा

योजनाबद्ध कार्यक्रम के अनुरूप भारत के विदेशी व्यापार की मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि जारी है। GDP में विदेशी व्यापार की अनुपात जोकि वर्ष 1950 में केवल 8 प्रतिशत था वर्तमान में बढ़कर 20 प्रतिशत से अधिक हो गया है। विदेशी व्यापार की मात्रा में वृद्धि लाने में निर्यातों एवं आयातों दोनों का ही योगदान रहा है जैसा कि तालिका-1 से स्पष्ट है।

तालिका 1 : योजनाओं के दौरान भारत के विदेशी व्यापार की वृद्धि दर

(वार्षिक प्रतिशत दर)

योजना/अवधि	निर्यात	आयात
I	–	5.0
II	0.7	7.7
III	4.9	4.7
IV	13.6	11.7
V	18.3	19.5
VI	13.0	13.9

VII	19.8	16.0
1990-91	9.1	13.2
1991-92	−1.5	−19.4
VIII		
1992-93	3.8	12.7
1993-94	20.0	6.5
1994-95	18.4	22.9
1995-96	20.7	28.0
1996-97	5.3	6.7
IX		
1997-98	4.5	5.9
1998-99	−3.9	0.9

उपरोक्त पृष्ठभूमि में हम निर्यात और आयात की प्रवृत्तियों का अलग-अलग अध्ययन करना चाहेंगे।

22.4.1 निर्यातों का मूल्य

वर्ष 1950-51 से 1997-98 की अवधि में भारत के निर्यातों का मूल्य 606 करोड़ रुपये से बढ़कर 1,41,604 करोड़ रुपये हो चुका है। निर्यातों की इस बढ़ती प्रवृत्ति का स्पष्ट अध्ययन योजनावार निर्यातों में हुए परिवर्तन की सहायता से किया जा सकता है। इससे संबद्ध आँकड़े तालिका 2 में दिए गए हैं।

तालिका-2 भारत की पंचवर्षीय योजनाओं में निर्यातों का औसत वार्षिक मूल्य

(करोड़ रुपये)

योजना	**मूल्य**
पहली	605.4
दूसरी	605.8
तीसरी	752.8
चौथी	1810.0
पाँचवीं	5346.0
छठी	8967.0
सातवीं	15582.0
आठवीं	86270.0

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि पहली तीन योजनाओं के दौरान भारत के निर्यातों में कोई विशेष वृद्धि नहीं हो पाई थी। चौथी योजना के दौरान भारत के निर्यातों में उत्साहवर्धक वृद्धि हुई और उसके बाद क्रमशः ये बढ़ते रहे हैं।

किंतु जैसा कि हम पहले स्पष्ट कर चुके हैं कि निर्यातों के निरपेक्ष मूल्यों से कोई स्पष्ट निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते। एक तो यह आँकड़े चालू कीमतों पर आँके जाते हैं। जिसके कारण निर्यातों की वास्तविक मात्रा का सही अनुमान नहीं लगाया जा सकता। दूसरा, निरपेक्ष मूल्यों से अर्थव्यवस्था में निर्यातों की बदलती भूमिका की झलक नहीं स्पष्ट हो पाती। इन कारणों से यह आवश्यक है कि हम निर्यातों की सापेक्ष भूमिका का अध्ययन करें।

इस तरह के सापेक्षिक अध्ययन के लिए हम निर्यात-मूल्यों की निम्न दो के संदर्भ में हुई प्रवृत्ति का अध्ययन कर सकते हैं। (क) शुद्ध राष्ट्रीय उत्पाद में निर्यातों का हिस्सा, तथा (ख) विश्व के कुल निर्यातों में भारत के निर्यातों का हिस्सा। इनसे संबद्ध आवश्यक आँकड़े तालिका-3 में प्रस्तुत किए गए हैं।

तालिका-3 : भारत के चुने हुए निर्यात अनुपात

(भारत में निर्यात के रूप में)

वर्ष	विश्व के कुल निर्यात	भारत की राष्ट्रीय आय
1950-51	2.20	6.8
1960-61	1.05	4.2
1970-71	0.64	3.8
1980-81	0.42	5.4
1990-91	0.52	6.9
1994-95	0.58	8.9
1995-96	0.64	9.2
1997-98	0.60	9.0

क) **राष्ट्रीय आय में वृद्धि के साथ तुलना :** तालिका-3 से स्पष्ट है कि विकास के आरंभिक चरणों में भारतीय निर्यातों की वृद्धि दर भारत के राष्ट्रीय उत्पाद की वृद्धि दर से धीमी थी। परिणामस्वरूप भारत की राष्ट्रीय आय के अनुपात के रूप में निर्यात मूल्य जोकि वर्ष 1950-51 में 6.8 प्रतिशत थे 1970-71 में कम होकर 3.8 प्रतिशत रह गए।

किंतु इसके बाद से इस अनुपात में क्रमशः वृद्धि जारी है। यह इसका प्रतीक है कि भारत के आर्थिक विकास में निर्यात क्षेत्र की भूमिका उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है।

ख) **विश्व के कुल निर्यातों में वृद्धि के साथ तुलना :** तालिका-3 से पुनः यह स्पष्ट है कि विश्व के कुल नियातों के अनुपात के रूप में आयोजन के आरंभिक चरणों के दौरान भारत के निर्यातों में भारी कमी आई। किंतु आठवें व नवें दशक के दौरान भारत के निर्यातों में तेज गति के परिणामस्वरूप विश्व के कुल निर्यातों में इनके अनुपात में सुधार हुआ है। इस अवधि में यह अनुपात 0.50 से 0.65 प्रतिशत के बीच रहा है। यह तुच्छ अनुपात इस बात का संकेत देता है कि अपने निर्यातों को बढ़ाने के लिए भारत के समक्ष अपार अवसर हैं। अनेक विकासशील देशों के निर्यात की वृद्धि दर भारत के निर्यातों की वृद्धि दर से कहीं अधिक रही है। जहाँ 1980-92 की अवधि में भारत के निर्यातों में औसतन 5.9 प्रतिशत वार्षिक दर से वास्तविक वृद्धि हुई, चीन, दक्षिण कोरिया, मलेशिया, पाकिस्तान आदि अनेक विकासशील देशों के निर्यात 11

प्रतिशत वार्षिक दर से बढ़े। जहाँ चीन के कुल निर्यात जोकि वर्ष 1980 में $22 बिलियन थे और वर्ष 1992 में बढ़कर #125 बिलियन हो गए थे, भारत के निर्यात इसी अवधि में $10 बिलियन से बढ़कर $25 मिलियन ही हो गए। भारतीय निर्यातों की धीमी गति से वृद्धि के कारण विश्व के निर्यातक देशों में भारत का स्थान जोकि वर्ष 1953 में 16वाँ था वर्ष 1983 में गिरकर 25वाँ रह गया था और वर्तमान में यह 30वाँ है।

22.4.2 निर्यातों के धीमी गति से बढ़ने के कारण

भारतीय निर्यातों के अपेक्षाकृत धीमी गति से बढ़ने के लिए ज़िम्मेदार प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं :

पहला, निर्यातों के धीमी गति से बढ़ने का प्रमुख कारण रहा है : आपूर्ति का अभाव तथा निर्यात-योग्य उत्पादों की अपर्याप्तता। यदि भारत अंतरराष्ट्रीय परिस्थितियों से लाभांवित होना चाहता है तो यह अनिवार्य है कि निर्यात-योग्य उत्पादों के घरेलू उत्पादन की समुचित व्यवस्था की जाए, बल्कि आवश्यकता से अधिक उत्पादन-क्षमता का भी हमें निर्माण करना होगा जिससे कि हम यदा-कदा बाज़ार स्थितियों में होने वाले परिवर्तनों का भी लाभ उठा सकें। यह विशेष रूप से उन उत्पादन इकाइयों के लिए अनिवार्य समझा जाना चाहिए जोकि अपने कुल उत्पादन के एक बड़े भाग का निर्यात कर पाती हैं।

दूसरा, विश्व के बाज़ारों में सबसे अधिक बिक्री नई तकनीकी से निर्मित पदार्थों की होती है। जबकि वर्ष 1980 में ऐसे उत्पादों को कुल निर्यातों में 50.70 के लगभग हिस्सा था वर्तमान में यह अनुपात बढ़कर 60 प्रतिशत से भी अधिक हो चुका है। अतीत में तो भारत इस तरह के उत्पादन में असमर्थ रहा है। केवल पिछले कुछ एक वर्षों से ही हम क्षमता का परिचय दे पाए हैं।

तीसरा, निर्यात-योग्य उत्पादों की मात्रा के साथ ही जुड़ा हुआ है। ऐसे उत्पादों की गुणात्मक विशेषता का प्रश्न। प्रतिस्पर्धात्मक बाज़ारों में अच्छी किस्म की वस्तु जोकि उपभोक्ता की पसंद की कसौटी पर खरी उतरती है अपेक्षाकृत कुछ ऊँची कीमत पर भी आसानी से बेची जा सकती है। किंतु विदेशी बाज़ारों में भारतीय उत्पादों की साख इस दृष्टि से कोई अच्छी नहीं है। निर्यातकों द्वारा इस पहलू की अपेक्षा की गई है और यदा-कदा निम्न कोटि की वस्तुओं का भी निर्यात किया गया है। परिणामस्वरूप भारत की पहचान निम्न कोटि उत्पादों के उत्पादक के रूप में बनकर रह गई है।

चौथा, हमारे प्रतिद्वंद्वी राष्ट्रों द्वारा आधुनिकतम तकनीक बड़े पैमाने पर अपनाई गई है। परिणामतः यहाँ तो उत्पादों की प्रतिस्पर्धा शक्ति में सुधार हुआ है। इसके विपरीत भारतीय उत्पादकों में तकनीकी सुधार के वास्ते कोई विशेष प्रयास नहीं किए गए। परिणामतः जब उत्पादन लागत अधिक होती है तब भारतीय उत्पादक विदेशी बाज़ारों में अपेक्षाकृत ऊँची कीमतों पर ही अपना सामान बेच सकते हैं। अतः वे प्रतिस्पर्धा में पिछड़ जाते हैं।

पाँचवाँ, पर्याप्त परिवहन एवं जहाजरानी सुविधाओं का अभाव भी भारतीय निर्यातकों के लिए बहुत बड़ी परेशानी का कारण है। जहाजरानी से संबद्ध अनेक कमियों के परिणामस्वरूप भारतीय निर्यात नहीं बढ़ पाते हैं।

अंततः, अन्य विकासशील देशों की तरह भारत के निर्यातों को भी विकसित देशों द्वारा लगाए

तटकर एवं गैर-तटकर प्रतिबंधों का सामना करना पड़ता है। भारतीय निर्यातों को क्षेत्रीय गुटों से भी निपटना होगा। हालाँकि क्षेत्रीय गुटों के बन जाने के बाद भारतीय उत्पादकों के समक्ष निर्यात के लिए अवसर भी उभरकर आएँगे लेकिन उनका लाभ उठाने के लिए हमें विशेष प्रयास करने होंगे।

22.4.3 आयातों के मूल्य

योजनावधि के दौरान भारत के कुल आयात जो वर्ष 1950-51 में 608 करोड़ रुपये मूल्य के थे 1998-99 में बढ़कर 1,76,099 करोड़ रुपये मूल्य के हो चुके हैं। अर्थात् इस अवधि में भारत के आयातों में 250 गुणा से अधिक वृद्धि हो चुकी है। तालिका-4 में भारत के आयातों में रोजगार वृद्धि का ब्यौरा प्रस्तुत किया गया है।

तालिका-4 : भारत के आयातों में योजनावार वृद्धि

(वार्षिक औसत करोड़ रुपये)

योजना/अवधि	मूल्य
पहली	735
दूसरी	973
तीसरी	1240
चौथी	1973
पाँचवीं	6463
छठी	14683
सातवीं	25114
आठवीं	96235

वस्तुतः वर्ष 1954-55 के बाद से भारत के आयातों में क्रमशः वृद्धि जारी है। जबकि निर्यातों की मात्रा विदेशी बाज़ारों में भारतीय माल की माँग एवं घरेलू बाज़ार में निर्यात-योग्य अतिरेकों की उपलब्धि पर निर्भर रही है आयातों की मात्रा प्रमुखतः इस बारे में अपनाई गई सरकारी नीति से प्रभावित होती रही है।

इस संदर्भ में अपनाई गई सरकारी नीति की दृष्टि से हम समस्त योजनावधि को दो भागों में बाँट सकते हैं।

पहली अवधि लगभग वर्ष 1957 तक ही सीमित रही। इस दौरान पहली पंचवर्षीय योजना को पूरा किया गया। इस अवधि के दौरान विदेशी मुद्रा की सुलभ उपलब्धि के परिणामस्वरूप आयातों के प्रति उदार रवैया नीति ही अपनाई गई। किंतु, उदारता के बावजूद भी आयातों में बहुत अधिक वृद्धि संभव नहीं हो पाई। इस अवधि में सबसे अधिक आयात वर्ष 1951-52 में किए गए जबकि इनका मूल्य 970 करोड़ रुपए आँका गया।

दूसरी अवधि वर्ष 1957-58 से आरंभ हुई। इस समय तक भारत के विदेशी विनिमय की स्थिति काफी जटिल हो गई थी, इसलिए आयात नीति में मौलिक परिवर्तन की आवश्यकता अनुभव की गई। भारत के विकास की युक्ति में नियंत्रित आयात को एक अनिवार्य नीति के रूप में अपनाया गया। 1957-58 से लेकर अब तक नियंत्रित आयात की नीति को अमल में

लाया जा रहा है। यद्यपि नियंत्रणों की मात्रा व प्रकृति देश की आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित होती रही है। जब कभी विदेशी विनिमय की स्थिति में सुधार हुआ है, सुलभ आयात नीति को अपनाया गया था। इसके विपरीत, विदेशी विनिमय का संकट उत्पन्न होने पर आयातों पर कड़े नियंत्रण भी लगाए गए हैं। आरंभ में आयात नियंत्रणों का उद्देश्य विदेशी विनिमय की मात्रा में बचत करना था, लेकिन अब इनका उद्देश्य देश के औद्योगिक विकास एवं आर्थिक विकास की विविध आवश्यकताओं के अनुरूप आयातों को समायोजित करना है। अब आयात नीति द्वारा केवल आवश्यक वस्तुओं के आयात अथवा ऐसी वस्तुओं के आयात को ही प्रतिबंधित नहीं किया जाता जिनका देश के भीतर ही उत्पादन हो सकता है, बल्कि इसका उद्देश्य ऐसे पदार्थों के आयातों को प्रोत्साहित करना भी है जिनसे देश के औद्योगिक विकास के आधार को मजबूत बनाने में मदद मिलती है।

22.4.4 आयात एवं राष्ट्रीय आय

आयात के स्तर की विवेचना के लिए आयातों तथा राष्ट्रीय आय के बीच संबंध की जानकारी आवश्यक है। आयोजित अर्थव्यवस्था में विकास की आवश्यकताओं के कारण सामान्यतया आयातों में राष्ट्रीय आय की तुलना में तेजी से वृद्धि होती है। इसका कारण यह है कि आर्थिक विकास के लिए राष्ट्रीय आय के अधिकारिक भाग को निवेश कार्यों पर व्यय करना पड़ता है तथा विकास के आरंभिक चरण में निवेश आयातित वस्तुओं का अनुपात काफी अधिक होता है। इसके अलावा औद्योगिक विकास के लिए भी अधिक मात्रा में औद्योगिक कच्चे माल, मशीनरी आदि का अयात करना पड़ता है।

भारत में आयातों एवं राष्ट्रीय आय के बीच संबंध में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुए हैं। सामान्यतया, योजनावधि के पहले 30 वर्षों आय में आयातों का अनुपात 6.5 से 8.5 प्रतिशत के बीच रहा। वर्ष 1979-80 से बाद की अवधि में यह अनुपात बढ़कर 10 से 12 प्रतिशत के बीच हो गया है। आयात के अनुपात में स्थायित्व का अभिप्राय यह है कि प्रति इकाई घरेलू उत्पादन के लिए अपेक्षित आयातों में बहुत कम परिवर्तन हुआ है। यह बात स्मरणीय है कि कुछ वस्तुओं के प्रति इकाई उत्पादन के आयात की आवश्यकताओं में वृद्धि हुई है जबकि कुछ अन्य वस्तुओं के उत्पादन के लिए इनमें कमी हुई है और इसका कुल प्रभाव आयात अनुपात में स्थिरता के रूप में प्रतीत हो रहा है।

22.5 व्यापार घाटे और व्यापार शर्तें

वर्ष 1972-73 तथा 1976-77 के अलावा सम्पूर्ण योजनावधि में भारत के आयात उसके निर्यातों से अधिक रहे हैं एवं व्यापार घाटों का आकार निरंतर बढ़ता रहा है। आठवें दशक के आरंभ में इन घाटों ने गंभीर रूप धारण कर लिया था। 1980-85 की अवधि में औसत वार्षिक घाटे 5716 करोड़ रुपये मूल्य के रहे जबकि 1985-90 में यह बढ़कर 7,671 करोड़ रुपये तथा 1990-94 में 6,000 करोड़ रुपये एवं 1994-99 में 21,028 करोड़ मूल्य के हो गए। सातवें दशक तक के व्यापार घाटों के लिए कुछ सीमा तक व्यापार-शर्तों की प्रतिकूलता का भी योगदान रहा। आठवें दशक के बाद से व्यापार घाटों का प्रमुख कारण निर्यातों की तुलना में आयातों में तेज गति से वृद्धि रहा। इस अवधि में व्यापार शर्तों में हमारे अनुकूल परिवर्तन हुए। परिणामतः व्यापार घाटों पर थोड़ा-बहुत काबू पाना संभव हो पाया। इस अवधि में निबल वस्तु विनिमय व्यापार शर्तों (Net Barter Terms of Trade) में 30 प्रतिशत का सुधार हुआ। इसके आगे वाली अवधि में व्यापार-शर्तों में सुधार का सिलसिला जारी रहा। जैसाकि तालिका-5 से स्पष्ट है।

(आधार 1978-79 = 100)

वर्ष	1990-91	91-92	92-93	93-94	94-95	95-96	96-97
व्यापार शर्तें	109.3	119.5	121.3	144.9	152.4	137.9	126.2

हालाँकि इस अवधि में व्यापार घाटे निरंतर बढ़ते हैं किंतु विदेशी पूँजी के भारी अंतर्वाह के कारण व्यापार-घाटे अब हमारे लिए चिंता का विषय नहीं रहे हैं बल्कि इनका प्रयोग देश में उत्पादन क्षमता के निर्माण एवं इसमें गुणात्मक सुधार के लिए किया जा रहा है जिससे यह अपेक्षा की जा रही है कि आने वाले वर्षों में भारत की विदेशी बाज़ारों में प्रतिस्पर्धा शक्ति में सुधार होगा और भारतीय माल विदेशों में आसानी से बिक पाएगा।

बोध प्रश्न 2

1) निम्न में से सही कथन छाँटिए :

   क) हाल के वर्षों में भारतीय निर्यातों में भारी वृद्धि हुई है।
   ख) विश्व के कुल निर्यातों में भारत के निर्यातों का अनुपात निरंतर बढ़ता रहा है।
   ग) भारत की राष्ट्रीय आय के अनुपात के रूप में भारतीय निर्यातों में निरंतर वृद्धि होती रही है।
   घ) भारत की राष्ट्रीय आय के अनुपात के रूप में भारतीय आयातों में निरंतर वृद्धि होती रही है।

2) भारत के निर्यातों की धीमी गति से बढ़ने के चार कारण बतलाएँ।

.....

.....

.....

.....

.....

3) व्यापार घाटों से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

.....

22.6 भारत के विदेशी व्यापार की संरचना

विदेशी व्यापार का जो चित्रण इसके आकार, मूल्य एवं व्यापार शर्तों से स्पष्ट होता है प्रायः वैसा ही चित्रण भारत के विदेशी व्यापार की सरंचना से भी स्पष्ट होता है।

22.6.1 निर्यातों की संरचना

भारत में आर्थिक आयोजन की अवधि में निर्यातों की संरचना में जो विशेषताएँ दिखलाई देती हैं उनकी समीक्षा तालिका-6 में प्रस्तुत आँकड़ों की सहायता से की जा सकती है।

तालिका-6 : भारत के निर्यातों की संरचना

(मूल्य करोड़ रुपये में)

वस्तु-वर्ग	1960-61	1970-71	1980-81	1990-91	1995-96	1998-99
1. कृषि एवं सम्बद्ध उत्पाद	284 (44.23)	487 (31.37)	204 (36.65)	6317 (19.57)	21138 (19.20)	25225 (17.8)
2. चूर्ण एवं खनन	52 (0.81)	164 (10.68)	414 (6.17)	1497 (4.60)	3061 (3.70)	3748 (2.6)
3. विनिर्मित वस्तुएँ	219 (45.53)	772 (50.30)	3737 (58.33)	23736 (72.91)	80219 (75.20)	10853 (76.6)
4. खनिज तेल	7 (0.01)	13 (0.01)	28 (0.04)	948 (2.91)	1761 (1.40)	376 (0.6)
5. अन्य	8 (0.01)	100 (0.06)	446 (6.94)	55 (0.02)	174 (0.50)	3701 (2.6)
कुल	642 (100.0)	1535 (100.0)	6711 (100.0)	3253 (100.0)	106353 (100.0)	141604 (100.0)

तालिका-6 में भारत द्वारा निर्यात की जाने वाली विभिन्न मदों को 5 भागों में वर्गीकृत किया गया है। तालिका से स्पष्ट है कि (अ) कुल निर्यातों में कृषि व संबद्ध पदार्थों के निर्यातों का अनुपात बराबर कम होता जा रहा है, जबकि (आ) विनिर्मित वस्तुओं का सापेक्ष योगदान बढ़ता जा रहा है। और अधिक गहन विश्लेषण के लिए हम सभी मदों को तीन वर्गों में बाँट सकते हैं। ये वर्ग हैं : (1) निर्यात-उन्मुख विनिर्मित सामान, अर्थात् उन उद्योगों के निर्यात जोकि प्रमुखतः विदेशी बाज़ारों के लिए ही उत्पादन करते हैं, (2) घरेलू-बाज़ार उन्मुख विनिर्मित सामान का निर्यात, एवं (3) गैर-विनिर्मित सामान अर्थात् वे उत्पाद जोकि प्राकृतिक देन हैं अथवा कृषि क्षेत्र से प्राप्त होते हैं। कुल निर्यातों में तीनों वर्गों का अनुपात क्रमशः 53 प्रतिशत, 12 प्रतिशत एवं 35 प्रतिशत रहा है। स्पष्ट रूप से हमारे कुल निर्यातों में विनिर्मित सामान का पलड़ा भारी हो चुका है। औद्योगिक विकास की इच्छुक एक अर्थव्यवस्था के लिए यह प्रवृत्ति अनुकूल ही समझी जानी चाहिए।

किंतु यहाँ हम एक विकृति की ओर ध्यान दिलवाना चाहेंगे। जहाँ हम यह चाहेंगे कि हमारे विनिर्मित उत्पादों में विविधता का प्रसार हो और हम नई-से-नई अलग-अलग वस्तुओं का निर्यात करें। हम क्या देख रहे हैं कि हमारे निर्यात कुछ एक चुनी हुई विनिर्मित वस्तुओं तक ही सीमित करें, हम क्या देख रहे हैं कि हमारे निर्यात कुछ एक चुनी हुई विनिर्मित वस्तुओं तक ही सीमित होकर रह गए हैं। जहाँ वर्ष 1984-85 में चमड़ा एवं विनिर्मित सामान, कपड़ा और सिले-सिलाए कपड़े तथा कीमती पत्थरों और आभूषणों समेत उत्पाद वर्गों का कुल निर्यात में अनुपात लगभग 50 प्रतिशत था 1998-99 में यह बढ़कर 67 प्रतिशत के लगभग हो गया था। निर्यातों में केन्द्रीयकरण की इस प्रवृत्ति को दो पहलुओं से देखा जा सकता है। सकारात्मक पहलू की यदि हम पहले बात करें तो हमें ज्ञात होता है कि इन वस्तुओं के उत्पादन में भारत की अन्य देशों की तुलना में सापेक्षिक उत्पादन लागत कम है। और चूँकि

इन सभी वस्तुओं की आय माँग लोचपूर्ण होती है अतः स्वाभाविक है कि विकसित देशों में इनकी माँग निरंतर बढ़ती जाएगी।

किंतु यदि हम नकारात्मक पहलू पर ध्यान दें तो हम जानते हैं कि तेज गति से औद्योगिक विकास पर चलने वाले देशों द्वारा इंजीनियरी के सामान के निर्यात पर बल दिया जाना चाहिए। इसके लिए हम तीन कारकों का उल्लेख कर सकते हैं। **पहला,** भारत में अनेक तरह की इंजीनियरी वस्तुओं का उत्पादन किया जाता है जिनकी कि शेष विश्व में माँग की जाती है। **दूसरा,** भारत के इंजीनियरी सामान के लिए विदेशी बाज़ार पूरी तरह से खुले हैं यदि भारत विदेशों में स्वीकार्य उत्पाद प्रस्तुत कर पाने में सक्षम हो जाता है। **तीसरा,** भारतीय इंजीनियरी उद्योग का केंद्र बिंदु घरेलू बाज़ार ही रहा है। उद्योग को अपने दृष्टिकोण में मौलिक परिवर्तन करने होंगे और ऐसी तकनीक एवं नीतियाँ अपनानी होंगी जिनसे यह खुद अपने आपको विदेशी बाज़ारों की आवश्यकताओं को पूरा करने के योग्य बना पाए।

22.6.2 आयातों की संरचना

जैसा कि हम पहले भी स्पष्ट कर चुके हैं कि भारत में आयातों की मात्रा सरकार की आयात नियंत्रण नीति द्वारा प्रभावित हो रही है। सरकारी नीति का उद्देश्य अर्थव्यवस्था के विकास के लिए आवश्यक वस्तुओं के आयात की वित्तीय व्यवस्था के लिए दुर्लभ विदेशी विनिमय को बचा रखना है। इसलिए देश की आवश्यकताओं के अनुरूप आयातों में समय-समय पर परिवर्तन किए गए हैं। भारत के आयातों को तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है : (क) उपभोक्ता वस्तुएँ, (ख) कच्चा माल एवं मध्यवर्ती वस्तुएँ (ग) पूँजीगत वस्तुएँ।

सरकार की नीति ये रही है कि उपभोक्ता वस्तुओं के आयात को नियंत्रित किया जाए अथवा घरेलू स्वल्पता की अवस्था में ही इनके आयात की अनुमति दी जाए तथा कच्चा माल, मध्यवर्ती वस्तुएँ एवं पूँजीगत वस्तुओं के आयात में वृद्धि की जाए।

तालिका-7 में उपयोग के अनुसार भारत के प्रमुख आयातों को वर्गीकृत किया गया है।

तालिका-7 : भारत के प्रमुख आयात (उपयोग के अनुसार)

(प्रतिशत भाग)

वर्ग	1950-51	60-61	70-71	80-81	90-91	95-96	98-99
1. उपभोक्ता वस्तुएँ	26.2	23.9	13.0	12.1	3.5	3.8	5.5
2. कच्चा माल एवं मध्यवर्ती वस्तुएँ	53.6	46.6	54.6	62.4	77.8	68.5	72.6
3. पूँजीगत माल	20.2	29.5	24.7	25.0	15.0	20.1	21.9
कुल (अन्य समेत)	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**	**100.0**

आयातों की संरचना में प्रमुख रूप से निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं।

1) केवल घरेलू कमियों की आपूर्ति के लिए ही उपभोक्ता वस्तुओं के आयात की अनुमति दी गई है। आयातित उपभोक्ता, वस्तुओं में अनाज, विशेष रूप से गेहूँ, प्रमुख हैं। जिन वर्षों में फ़सल अच्छी नहीं होती है तभी अनाजों का आयात बढ़ता है। वर्ष 1976-77 के बाद से अनाजों का आयात लगभग नगण्य रहा है क्योंकि देश में खाद्यान्नों का उत्पादन संतोषजनक रहा है।

2) समयावधि 1955-56 से 1965-66 के दौरान पूँजीगत वस्तुओं जैसे मशीनरी एवं औद्योगिक उपकरणों के आयातों में तेजी से वृद्धि हुई। इसका कारण यह है कि द्वितीय एवं तृतीय पंचवर्षीय योजनाओं की विकास-युक्ति में बड़े एवं आधारभूत उद्योगों के विकास को काफी महत्त्व प्रदान किया गया था, चूँकि देश में पूँजीगत वस्तुओं का उत्पादन नहीं होता था, इसलिए बड़ी मात्रा में इनका विदेशों से आयात किया गया। अब जैसे–जैसे ऐसे उत्पादों की घरेलू उत्पादन क्षमता बढ़ती जा रही है कुल आयातों में इनके अनुपात में कमी आती जा रही है।

3) पूँजीगत वस्तुओं के स्थान पर अब औद्योगिक कच्चे माल तथा मध्यवर्ती वस्तुओं के आयात में वृद्धि हो रही है। इनको अनुरक्षण आयात (maintenance imports) का नाम दिया जाता है। अनुरक्षण आयातों में चार प्रकार की मदों को शामिल किया जाता है :

   i) कच्चे माल तथा संघटक जिनका उपयोग वर्तमान औद्योगिक क्षमताओं को बनाए रखने और उसमें विस्तार के लिए किया जाता है।
   ii) मध्यवर्ती पदार्थ जैसे कच्चा तेल जिनका उपयोग विभिन्न पेट्रोल पदार्थों के निर्माण में किया जाता है।
   iii) उर्वरक, कीटनाशक दवाइयाँ व मशीनें जिनका उपयोग कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिए किया जाता है।
   iv) खाद्यान्नों का आयात जिनका उपयोग पोषक तत्त्वों की माँग व आपूर्ति के संभावित अंतर को पूरा करने के लिए किया जाता है।

आर्थिक विकास की प्रक्रिया में तेज़ी के साथ कच्चे माल एवं मध्यवर्ती वस्तुओं की कमी अनुभव की जाने लगी। यदि इन वस्तुओं को आयात नहीं किया जाता तो पूँजीगत वस्तुओं की सम्पूर्ण क्षमता का प्रयोग नहीं हो सकेगा। इसलिए इन वस्तुओं के आयात के लिए एक उदार नीति को अपनाया गया है। इन वस्तुओं में कच्चा तेल, पेट्रोलियम पदार्थ, रेशा, उर्वरक, रसायन, लोह एवं इस्पात, अलोह पदार्थ आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

संक्षेप में, भारत के विदेशी व्यापार की संरचना हमारी अर्थव्यवस्था में योजना अवधि के दौरान हुए संरचनात्मक परिवर्तनों को प्रकट करती है। अब भारत प्राथमिक वस्तुओं का निर्यातक और निर्मित वस्तुओं का आयातकर्ता देश नहीं रहा है। अब यह निर्मित वस्तुओं का निर्यात करता है तथा कच्चा माल, मध्यवर्ती वस्तुओं एवं पूँजीगत वस्तुओं को आयात करता है।

22.7 भारत के विदेशी व्यापार की दिशा

22.7.1 निर्यातों की दिशा

भारत के निर्यातों की दिशा का बोध तालिका-8 से हो सकता है।

तालिका-8 : भारत के निर्यातों की दिशा 1998-99

(प्रतिशत)

देश/वर्ग	अंश
1. यूरोप समुदाय	25.0
2. अमरीका	19.5
3. जापान	5.5

4. रूस	2.6
5. बाकी पूर्वी यूरोप	0.5
6. तेल-निर्यातक देश	10.1
7. कम-विकसित देश	28.0
8. अन्य	8.7
कुल	100.0

भारत के निर्यात की दिशा की कुछ बातों का उल्लेख निम्न प्रकार किया जा सकता है :

1) गत वर्षों में भारत से इंग्लैण्ड एवं अमरीका को किए जाने वाले निर्यातों के सापेक्षिक अनुपात में कमी आई है। जहाँ 1950-51 में भारत के कुल नियातों का लगभग 24 प्रतिशत रह गया है, हालाँकि अमरीका अब भी भारतीय माल का सबसे बड़ा आयातकर्ता देश बना हुआ है। यूरोप समुदाय के देशों की भारत के निर्यातों में क्रमशः वृद्धि जारी है।

2) 1965 से 1975 के दशक में सोवियत रूस तथा अन्य पूर्वी यूरोप के देशों के साथ किए गए द्विपक्षीय समझौतों के परिणामस्वरूप इन देशों को दिए जाने वाले नियातों में भारी वृद्धि संभव हो सकी। सोवियत रूस के विघटन तथा कई अन्य पूर्ववत् समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में राजनैतिक उथल-पुथल के कारण इन देशों को दिए जाने वाले निर्यातों में भारी वृद्धि संभव हो सकी। सोवियत रूस के विघटन तथा कई अन्य पूर्ववत् समाजवादी अर्थव्यवस्थाओं में राजनैतिक उथल-पुथल के कारण इन देशों में भारत के निर्यातों में योगदान में भारी कमी आई है। भारत के कुल निर्यातों का लगभग केवल 3 प्रतिशत भाग ही इस वर्ग के देशों को अब भेजा जाता है।

3) इधर हाल के वर्षों में विशेष रूप से सोवियत रूस के विघटन के बाद से भारत से एशिया और ओशनिआ ग्रुप (Oceania) के देशों को जाने वाले निर्यातों की मात्रा में भारी वृद्धि संभव हो पाई है। इस ग्रुप में हम आस्ट्रेलिया, जापान, कोरिया, मलेशिया, सिंगापुर, थाइलैण्ड, हाँगकाँग, बंगलादेश एवं नेपाल आदि देशों को शामिल करते हैं। इन देशों को बढ़ते हुए निर्यात इस बात का परिचायक हैं कि भारत अपने पड़ौसी और समीप के देशों के साथ आर्थिक संबंध बढ़ाना चाहता है। यह भारतीय उत्पादकों के भी अधिक अनुकूल है क्योंकि यदि वे पड़ौसी देशों में अधिक मात्रा में अपना माल बेच पाते हैं तो विदेशों को भेजे जाने वाले माल पर होने वाली भारी परिवहन लागत से बचा जा सकता है। यह प्रवृत्ति आर्थिक सुधारों के परिणामस्वरूप भारतीय अर्थव्यवस्था की बढ़ती बाहर की ओर उन्मुखता का भी संकेत प्रदान करती है।

22.7.2 विविधीकरण अथवा केंद्रीकरण

भारत के निर्यातों एवं आयातों की दिशा का वर्णन करने के बाद एक स्वाभाविक प्रश्न उठता है कि भारत के व्यापारिक संबंध कुछ चुने हुए देशों तक ही सीमित है अथवा ये विश्वभर में फैले हुए है

उपलब्ध स्थिति की जब हम समीक्षा करते हैं तो हम पाते हैं कि 1951-52 से 1979-80 की अवधि में इंग्लैण्ड, जर्मनी, पूर्ववत् सोवियत यूनियन, जापान, इराक, ईरान, आस्ट्रेलिया और कनाडा मिलकर नौ देश हमारे कुल निर्यातों के 51 से 62 प्रतिशत भाग प्राप्त करते थे जबकि हमारे 56 से 75 प्रतिशत आयात इन्हीं नौ देशों से आया करते थे। वर्ष 1990-91 में इन देशों का भारत के निर्यातों में अनुपात 56.7 प्रतिशत तथा आयातों में 47.6 प्रतिशत था।

वर्ष 1998-1999 में हमारे निर्यातों में से 36 प्रतिशत यूरोप समुदाय, अमरीका और जापान को गए जबकि यहाँ से हमारे कुल आयातों के 41.5 प्रतिशत भाग प्राप्त हुए।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि भारत के विदेशी व्यापार में विविधता नहीं पाई जाती है बल्कि ये संबंध छः ही देशों तक केंद्रित हैं। इस तरह की प्रवृत्ति देश के दीर्घकालिक हित में सिद्ध नहीं हो सकती। हमें अन्य विकासशील देशों के साथ अपने व्यापारिक संबंधों को विस्तार देना होगा। लेकिन साथ ही यह भी जरूरी है कि अमरीका, जापान आदि विकसित देशों के साथ भी हमारे व्यापारिक संबंधों को और मजबूत किया जाए। ये देश हमारे उत्पादों के निर्यातों के लिए बड़े आकार को प्रस्तुत करने में सक्षम हैं।

संक्षेप में, हमें व्यापार की दिशा को इस प्रकार विकसित करना होगा कि हम विदेशी व्यापार से लाभांवित हो सकें तथा विदेशी व्यापार हमारे तीव्र गति से आर्थिक विकास के लक्ष्य की प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो सके।

22.7.3 आयातों की दिशा

भारत के आयातों की दिशा अर्थव्यवस्था की विकास संबंधी आवश्यकताओं पर निर्भर करती रही है। विकास के आरंभिक चरण में भारत की विकास आवश्यकताओं की वित्तीय आपूर्ति विदेशी सहायता के माध्यम से की गई थी और उसमें बँधी हुई सहायता का प्रमुख स्थान था। इसलिए आर्थिक सहायता प्रदान करने वाले देशों से ही भारत ने वस्तुओं एवं सेवाओं का आयात किया था। उदाहरण के लिए, वर्ष 1965-66 में भारत के कुल आयातों का लगभग 36 प्रतिशत भाग केवल अमरीका से किया गया था। यद्यपि अब भी भारत बड़ी मात्रा में अमरीका से आयात करता है लेकिन इस देश के सापेक्ष अनुपात में काफी गिरावट आई है जैसा कि तालिका-8 से स्पष्ट होता है।

तालिका-8 : भारत के आयातों की दिशा

1998-99 (प्रतिशत योगदान)

देश/क्षेत्र	अंशदान
1. बाकी यूरोप समुदाय	23.8
2. अमरीका	9.0
3. जापान	5.1
4. रूस	1.5
5. बाकी पूर्वी यूरोप	0.6
6. तेल-निर्यातक देश	23.8
7. कम-विकसित देश	17.9
8. अन्य	18.3
कुल	**100.0**

इसी प्रकार, यद्यपि इंग्लैण्ड से काफी बड़ी मात्रा में आयात किए जाते हैं लेकिन पहले की तुलना में अब इस अनुपात में कमी हुई है। विगत वर्षों में भारत ने बैल्जियम, कनाडा, फ्रांस, जर्मनी तथा जापान आदि देशों के साथ आयात के महत्त्वपूर्ण व्यापार संबंध स्थापित किए गए है।

सोवियत यूनियन एवं पूर्वी यूरोप के देशों से ही हम भारी मात्रा में आयात किया करते थे। किंतु वर्तमान में इस दिशा में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए हैं। इस वर्ग के देशों से अब हम कुल आयातों का केवल 2 प्रतिशत भाग ही प्राप्त करते हैं।

हाल के वर्षों में भारत खाड़ी के तेल-निर्यातक देशों से भारी मात्रा में आयात कर रहा है। आर्थिक विकास के साथ कच्चे तेल एवं पेट्रोल-उत्पादों की हमारी आवश्यकताएँ निरंतर बढ़ती जा रही हैं। इन आवश्यकताओं की पूर्ति खाड़ी देशों से ही आयात द्वारा ही की जा सकती है।

बोध प्रश्न 3

1) भारत के प्रमुख निर्यातों के नाम बतलाएँ।

.....

.....

.....

.....

.....

2) भारत के प्रमुख आयातों के नाम बतलाएँ।

.....

.....

.....

.....

.....

3) अनुरक्षण आयातों के तीन उदाहरण बतलाएँ।

.....

.....

.....

.....

.....

4) स्वतंत्रता उपरांत भारत के विदेशी व्यापार की दिशा में क्या परिवर्तन पाए जाते हैं?

.....

.....

.....

.....

.....

22.8 सारांश

योजनावधि के दौरान भारत के विदेशी व्यापार के मूल्य, संरचना एवं दिशा में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर हुए हैं। यद्यपि ये सभी परिवर्तन विकास की आवश्यकताओं के अनुकूल ही रहे हैं किंतु फिर भी एक-दो समस्याओं की ओर ध्यान देना होगा। भारत के व्यापार घाटे निरंतर बढ़ते रहे हैं और अतीत में बढ़ते व्यापार घाटे चिंता का विषय भी बने रहे हैं। अतः यह आवश्यक है कि व्यापार घाटों की प्रवृत्ति पर निगरानी रखी जाए तथा इन्हें काबू से बाहर नहीं होने दिया जाए। दूसरा, यह भी ध्यान देने योग्य है कि भारतीय व्यापार का विश्व के कुल व्यापार में प्रतिशत अंशदान कम होता रहा है। हमें इस प्रवृत्ति को बदलना होगा। यदि भारत को अपने आकार एवं क्षमता के अनुरूप अंतरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था में भूमिका निभानी है।

22.9 शब्दावली

प्राथमिक वस्तुएँ : वे वस्तुएँ जोकि प्रकृति होती हैं जैसे फ़सलें, समुद्री उत्पाद, खनिज आदि।

तटकर प्रतिबंध : सरकार द्वारा लगाए गए उत्पाद-शुल्क।

गैर-तटकर प्रतिबंध : किसी देश द्वारा दूसरे देशों से किए जाने वाले आयातों पर लगाई गई रुकावटें।

व्यापार नीति : वे सब नीतियाँ जो किसी देश के व्यापार को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से प्रभावित करती हैं।

व्यापार की मात्रा : देशों में व्यापार की जाने वाली वस्तुओं की भौतिक मात्रा।

व्यापार का मूल्य : देशों में वस्तुओं में आपसी लेन-देन का मौद्रिक मूल्य।

व्यापार की संरचना : विभिन्न देशों में आपसी आदान-प्रदान की वस्तुएँ।

व्यापार की दिशा : वे देश जिनके साथ कोई देश व्यापारिक संबंध रखता है।

व्यापार शर्तें : निर्यात कीमतों एवं आयात कीमतों का अनुपात।

22.10 कुछ उपयोगी पुस्तकें

Government of India : Economic Servey

Ishwar C. Dhingra : *The Indian Economy*

Vijay Joshi and I.M.D. Little : Indias Economic Reforms 1991-2001

Reserve Bank of India : Report on Currency and Finance

Bimal Jalan : *India's Economic Policy*

ईश्वर धींगरा : *भारत की आर्थिक समस्याएँ*

22.11 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) उप-भाग 22.2.1 देखें।
2) उप-भाग 22.2.2 देखें।
3) उप-भाग 22.2.3 देखें।

बोध प्रश्न 2

1) (क), (ख) और (घ) सही कथन हैं। भाग 22.4 का अध्ययन करें।
2) उप-भाग 22.4.2 देखें।
3) भाग 22.5 देखें।

बोध प्रश्न 3

1) उप-भाग 22.6.1 देखें।
2) उप-भाग 22.6.2 देखें।
3) उप-भाग 22.6.2 देखें।
4) भाग 22.7 का अध्ययन करें तथा भारत के निर्यात एवं आयात की दिशा में पाए जाने वाले परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए।